से भेंट हुई। मेरे शाप देने से उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा।''

भगवान महावीर- ''गोशालक! वह मेरे से पहले हुए प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमण हैं और सच्चे श्रमण हैं। तुमने उनका अनादर किया है।''

चोराक सन्निवेश का उपसर्ग

प्रभु महावीर गोशालक को समझाकर चोराक सन्निवेश पधारे। इस राज्य में तस्करी चरम सीमा पर थी। इसी कारण प्रहरी को सावधान रहना पड़ता था।

आरक्षकों ने जब दो नए आगन्तुकों को आते देखा तो पूछताछ की। प्रभु महावीर साधना के कारण मौन व्रत में थे। उन लोगों ने प्रभु को गुप्तचर समझकर बहुत शारीरिक यातनाएं दीं, प्रभु महावीर ने समता से सब सहन किया।

पर साधना तो साधना है, वह बेकार नहीं जाती। जब वह प्रभु महावीर को यातनाएं दे रहे थे, तो उस जंगल में भ्रमण करती सीमा और जयन्ती परिव्राजिकाएं आ पहुंचीं। वे दोनों उत्पल ज्योतिषी की बहनें थीं। उन्हें ज्ञात हुआ कि ये लोग अज्ञानतावश सिद्धार्थनन्दन को गुप्तचर समझ रहे हैं, तो तेजी से आगे बढ़ीं। उस स्थान पर आईं, जहां सैनिक प्रभु महावीर को यातनाएं दे रहे थे। उन्होंने आते ही सैनिकों को रोका और कहा- ''यह तो क्षत्रियकुण्डग्राम के राजकुमार वर्द्धमान हैं, जो आत्म-साधना के लिए गृह त्यागकर सत्य की तलाश कर रहे हैं।'' सिपाहियों ने प्रभु महावीर को मुक्त कर दिया और अपनी अज्ञानता के लिए क्षमा मांगी।[३]

चोराक सन्निवेश से विहार कर प्रभु पृष्ठनंदा की ओर पधारे। जहां उन्होंने चतुर्थ चातुर्मास सम्पन्न किया। चातुर्मास के समय उन्होंने विभिन्न प्रकार के आसन, तप व ध्यान किए। चार महीने आहार का त्याग किया।[४]

पांचवां वर्ष

वर्षावास समाप्त होने पर भगवान महावीर ''कयंगला'' नगरी में पधारे। वहां दरिद्रथेट नामधारी पाषंडस्थ लोग रहते थे। उनका अपना देवालय था। ये लोग पत्नी व सम्पत्ति के साथ रहते थे। भगवान महावीर ने एक रात्रि इसी स्थान पर व्यतीत करने का निश्चय किया।

उस रात्रि इन लोगों का कोई महोत्सव था। नृत्य-गायन हो रहा था। बाहर कड़ाके की ठण्ड पड़ रही थी। इस कड़कड़ाती ठण्ड की परवाह किए बिना प्रभु महावीर ध्यानस्थ खड़े थे। इधर नाच-गाना चल रहा था। गोशालक भी अपने स्वभाव के अनुसार नृत्य-गायन देख रहा था। यह उन लोगों का धार्मिक नृत्य था। गोशालक ने नाचते स्त्री-पुरूषों को देखा और कहा- ''यह कैसा धर्म है, जिसमें स्त्री-पुरूष निर्लज्ज होकर नाच रहे हैं?''

लोगों ने उसे प्रभु महावीर का शिष्य समझकर स्थान दिया। जब वह उन्हीं का अपमान करने लगा, तो लोगों ने अन्दर से पकड़कर उसे बाहर जंगल में फेंक दिया।

वह ठण्ड से ठिठुर रहा था। फिर वह बोला- ''संसार में सत्य बोलने की भी सजा मिल रही है।'' उन लोगों को उस पर दया आ गई और बुजुर्गों ने कहा कि चलो, जाने दो। इसे पुनः अन्दर बुला लो।[५]

आया और वह अपनी मूर्खतापूर्ण बात दोहराने लगा। इसकी कीमत गोशालक को तत्काल चुकानी पड़ी। पहले कुछ युवकों ने उसे पीटा। वृद्धों ने युवकों को समझाकर गोशालक की जान बचाई।

वृद्धों ने कहा- "हमें इस मूर्ख की बातों की ओर ध्यान न देकर अपना अनुष्ठान जारी रखना चाहिए। गीत और संगीत की आवाज इतनी ऊंची करो कि इस भिक्षु की आवाज ही गुम हो जाए।"

नवयुवकों को बुजुर्गों की बात जंच गई। गीत, संगीत जोर-शोर से पुनः चला। गोशालक की ओर किसी ने ध्यान न दिया। बाजे-गाजे के स्वर में गोशालक का स्वर किसी को सुनाई न दिया। अगली सुबह प्रभु महावीर वहां से विहार कर श्रावस्ती पधारे। नगर के बाहर कायोत्सर्ग तप किया।

श्रावस्ती में शिवदत्त ब्राह्मण की पत्नी ने मृत बालक के रुधिर से खीर बनाई थी। उसने वह खीर गोशालक को दी। गोशालक ने वह अपवित्र खीर खाई। प्रभु महावीर ने गोशालक को इस मूर्खता के प्रति सावधान किया। गोशालक के मन में शंका थी। प्रभु महावीर तो सर्वज्ञ थे। कुछ ही समय के बाद गोशालक ने वमन किया। वमन में वे सब वस्तुएं देखीं, जो प्रभु महावीर ने बताई थीं। इस बात को देखकर गोशालक का नियतिवाद पर विश्वास और दृढ़ हो गया।[९१]

श्रावस्ती से विहार कर प्रभु हलिंदुग गांव पधारे। गांव के समीप हलिंदुग नामक विराट् वृक्ष था। भगवान महावीर ने उसी वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया।

उधर अन्य यात्रियों ने भी वहां निवास किया था। उन्होंने सर्दी से बचने के लिए आग जलाई। सूर्योदय के समय इन यात्रियों ने वहां से प्रस्थान किया। वह आग धीरे-धीरे प्रभु महावीर की ओर बढ़ने लगी।

गोशालक कायरता दिखाता हुआ भाग खड़ा हुआ। प्रभु महावीर तो ध्यानस्थ थे। बाहर की घटनाओं से अनजान थे। वह तो आत्मभाव में डूब चुके थे। जिसे आत्मा की चिन्ता है, उसके लिए शरीर की कीमत कुछ नहीं रह जाती। आग हवा की सहायता से आगे बढ़ी। उसने प्रभु महावीर के कोमल शरीर को झुलसा दिया। उनके पांव बुरी तरह झुलस गए।

दोपहर को प्रभु महावीर ने वहां से नांगला गांव की ओर प्रस्थान किया। प्रभु बलदेव के मन्दिर में ध्यानस्थ हुए। नांगला से चलकर आवर्त गांव पधारे, वहां बलदेव के मन्दिर में ध्यान लगाया।[९६]

आवर्त्त से विचरण करते हुए भगवान महावीर व गोशालक चौराक सन्निवेश होते हुए कलंबुका सन्निवेश पधारे। कलंबुका के अधिकारी मेघ और कालहस्ती जागीरदार थे, पर वे दोनों डाके भी डालते थे। जिस समय प्रभु महावीर पहुंचे, कालहस्ती अपने गिरोह के साथ डाका डालने जा रहा था।

उसने परदेशी भिक्षु को देखा फिर पूछा- "तुम कौन हो?" दोनों ने ही कोई उत्तर नहीं दिया। पहले कालहस्ती ने उन्हें पीटा, फिर दोनों को अपने भाई मेघ के पास भेज दिया। दोनों को गुप्तचर समझा।

मेघ ने महावीर को गृहस्थ अवस्था में एक बार क्षत्रियकुण्डग्राम में देखा था। उसने प्रभु महावीर को पहचान लिया। प्रभु महावीर को बन्धन मुक्त किया। फिर क्षमा मांगते हुए कहने लगा- "प्रभु! मेरे भाई से यह अपराध अज्ञानतावश हुआ है।"[९७]

प्रभु महावीर अब अनार्य देश में अपने कर्मों को खपाने के लिए भ्रमण कर रहे थे। प्रभु महावीर के कर्मों का भुगतान काफी शेष था। प्रभु जानते थे कि मुझे अर्हत् बनने से पहले इन कर्मों से मुक्ति पानी है। इसलिए वह अनार्य देशों में विचरण करने लगे। ये क्षेत्र आधुनिक बंगाल, बंगला देश बिहार, उड़ीसा में

का आर विहार किया।

यह प्रदेश उपसर्ग व कष्टों से भरा पड़ा था। अनार्य लोग प्रभु को विभिन्न ढंग से कष्ट देते थे। उनके नग्न शरीर को देखकर लोग उनके पीछे कुत्ते लगा देते। कभी प्रभु महावीर के सुन्दर शरीर को देखकर स्त्रियां आसक्त हो जातीं। वे प्रभु महावीर से कामभोग की याचना करतीं। कभी उन्हें भयंकर मच्छर सताते। भिक्षा मिलने का तो वहां प्रश्न ही नहीं था। श्री आचारांगसूत्र में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

इन अनार्य लोगों की अवहेलना, निन्दा, तर्जना और ताड़ना आदि अनेक उपसर्गों को सहते आपने अपनी कर्मनिर्जरा की प्रक्रिया जारी रखी। यह समय दिल हिला देने वाले कष्टों से भरा पड़ा था। आदिवासी उन्हें नंगा देखकर डण्डों से पीटते थे।

भगवान महावीर राढ़(लाढ़) भूमि से वापस आ रहे थे। उसी की सीमा प्रदेश में पूर्ण कलश नामक अनार्य गांव से निकलकर आर्य देश की सीमा में जा रहे थे। रास्ते में दो चोर मिले, जो अनार्य देश में चोरी करने जा रहे थे। भगवान के दर्शन को इन चोरों ने अपशकुन मानकर उन पर आक्रमण किया। उसी समय प्रभु की रक्षा के लिए स्वयं इन्द्र प्रत्यक्ष रूप में आया। अपनी सेवा का प्रमाण देते हुए उसने चोरों को भगा दिया।

आप आर्य देश मलय में घूमने लगे। पांचवां वर्षावास आपने मलय की राजधानी भद्दिल नगरी में किया।

इस चातुर्मास में भी भगवान ने चातुर्मासिक तप और ध्यान आदि आसन किए। चातुर्मास समाप्त होने पर भगवान महावीर ने भद्दिल नगरी के बाहर पारणा किया। फिर कदली समागम की ओर विहार किया।

प्रभु महावीर की दीक्षा को पांच वर्ष पूर्ण हो चुके थे। छठा वर्ष शुरू हो गया था।

प्रभु महावीर कदली समागम में ध्यानस्थ हुए। कुछ समय वहां ठहरकर जंबुसडं पहुंचे।

छठा वर्ष

जंबुसडं से विहार करते हुए प्रभु तंबाय सन्निवेश गए। वहां पहले से ही ठहरे पार्श्वापत्य नन्दिसेण स्थविर घूम रहे थे। गोशालक उनसे मिलने चला गया। वहां वह उनसे भी झगड़ा मोल ले बैठा।

तंबाय से प्रभु कूविय सन्निवेश क्षेत्र में पधारे। वहां काफी सतर्कता थी। राजपुरुषों ने प्रभु व गोशालक दोनों को गुप्तचर समझकर पकड़ लिया गया। राजपुरुषों ने प्रभु को खूब पीटा, पर प्रभु न बोले। वह तो मौन व ध्यान अवस्था में थे।

परन्तु वहां भी विजया और प्रगल्भा दो परिव्राजिकाएं तुरन्त घटना-स्थल पर सूचना मिलते ही पहुंच गई। वे निडरता से राजपुरुषों को फटकारने लगीं-

"तुम जिन्हें गुप्तचर समझ रहे हो, वह तो क्षत्रियकुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के पुत्र हैं, अन्तिम तीर्थंकर हैं। क्या तुम इन्हें भी नहीं पहचानते? इनकी सेवा तो देवाधिदेव इन्द्र स्वयं करते हैं। जब उन्हें तुम्हारी हरकत का पता चलेगा, तो तुम्हारा और तुम्हारे राजा का विनाश निश्चित है।"

परिव्राजिकाओं की फटकार काम कर गई। राज्याधिकारी प्रभु महावीर की महानता पहचान चुके

प्रार्थना स्वीकार कर ली।

कूविय से भगवान महावीर वैशाली पहुंचे। वहां का प्रमुख चेटक प्रभु का मामा था। पर प्रभु महावीर ने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे निभाया। वह एक लुहार की शाला में ध्यानस्थ हुए। अगले दिन लुहार ६ महीने की बीमारी के पश्चात् जब कारखाने में आया, तो वह प्रभु को मारने दौड़ा। उसने पहले ही दिन प्रभु के दर्शन को अमंगलकारी और अकल्याणकारी माना। पर ज्यों ही उसने कदम बढ़ाए उसके पांव उसी धरती पर स्तम्भित हो गए। लुहार को अपनी भूल का ज्ञान हो चुका था। अज्ञानतावश उसने ऐसा मान लिया था कि वह मुण्डित भिक्षु अमंगलकारी है। वह नहीं जानता था कि यह तो क्षत्रियकुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के सुपुत्र व वैशाली की पुत्री त्रिशला के अंगजात राजकुमार हैं।

प्रभु महावीर वैशाली से चल पड़े। फिर ग्रामक सन्निवेश में पधारे। उस ग्राम सन्निवेश के एक उद्यान में विभेलक यक्ष था। वह प्रभु महावीर का बड़ा भक्त था। उसने वहां रहकर प्रभु की खूब सेवा की। प्रभु को कोई कष्ट नहीं होने दिया। वह स्वयं प्रभु की पूजा एवं भक्ति करने लगा।

कटपूतना का उपद्रव

प्रभु महावीर फिर ग्रामक नगर से शालिशीर्ष पधारे। नगर के बाहर उन्होंने आत्मभाव में विचरण करने वाला ध्यान लगाया। वे दिन माघ की ठण्ड के थे। भगवान महावीर का शरीर वस्त्ररहित था। वहीं कटपूतना नामक एक व्यंतरी ने प्रभु को घोर उपसर्ग दिया। भगवान महावीर के भव्य व अडोल रूप को देखकर वह द्वेष की आग से जल उठी। उसने उसी समय अपना रंग दिखाना शुरू किया। उसने सर्वप्रथम परिव्राजक रूप बनाया। अपनी बिखरी जटाओं में ठण्डा पानी भर-भरकर प्रभु के शरीर पर छिड़कने लगी। फिर उसने अपने देव-बल से शीत वायु चलाई, जो प्रभु के कंधों तक को छूती थी। उसने भीषण और असाधारण उपसर्ग दिए। प्रभु इन सब उपसर्गों में क्षणभर भी विचलित न हुए।

कटपूतना द्वारा दिए उपसर्गों को धैर्यपूर्वक सहने के कारण भगवान महावीर को "लोकाऽवधि" ज्ञान प्राप्त हो गया। इस ज्ञान के प्रभाव से आप लोकवर्ती समस्त द्रव्यों को हस्ताकमलवत् जानने वे देखने लगे। अन्त में प्रभु महावीर की धैर्य और क्षमाशीलता के सामने कटपूतना हार गई। उसने अपने क्रोध को शान्त किया। कटपूतना अपने असली रूप में आई। उसने अपने पापों का पश्चाताप किया। उसने प्रभु से क्षमा मांगी और स्व-स्थान पर चली गई।

शालिशीर्ष से विहार कर प्रभु भद्रिका नगरी पधारे। अब वर्षावास का समय आ चुका था। सो प्रभु योग्य स्थान की तलाश में घूमने लगे।

इधर गोशालक स्थान-स्थान पर भटक रहा था। वह यह सोचकर अलग हुआ था कि मुझे महावीर के कारण कष्ट उठाने पड़ते हैं। पर उसकी अब हालत बुरी से बुरी होती गई। वह ६ मास अलग विचरण करने के बाद पुनः प्रभु महावीर से आ मिला।

प्रभु महावीर ने यह चातुर्मास भद्रिका नगरी में बिताया। इस चातुर्मास में आपने चातुर्मास तप किया। भिन्न-भिन्न योगासन व ध्यान की क्रियाएं कीं। चातुर्मास समाप्त होते ही आपने सर्वप्रथम पारणा किया।

चातुर्मास समाप्त कर प्रभु महावीर ने मगध देश की ओर विहार किया। मगध देश में गर्मी व सर्दी के कष्टों को सहन किया। फिर इसी देश की आलंभिया नगरी में चातुर्मास किया। चातुर्मासिक तप और विविध योग साधनाएं सम्पन्न कीं।

चातुर्मास के अन्त में पारणा कर आपने वहां से विहार किया। यहां से चलकर आप कोल्लाग सन्निवेश की ओर पधारे। आपने कोल्लाग सन्निवेश में नगर के बाहर एक उद्यान में बने वासुदेव के मन्दिर को ध्यान स्थल बनाया। काफी दिन वह ध्यान-साधना करते रहे।

यहां प्रभु के किसी प्रकार के उपसर्ग का वर्णन उपलब्ध नहीं होता।

आठवां वर्ष

कोल्लाग सन्निवेश में विहार कर भद्दणा सन्निवेश में पधारे। वहां उद्यान में बने बलदेव के मन्दिर में ध्यान लगाया। यह मन्दिर नगर से बाहर था। भद्दणा सन्निवेश से आप बहुसाल होते हुए लोहार्गला पधारे। लोहार्गला के राजा जितशत्रु पर उन दिनों शत्रुओं का काफी आतंक था। नगर-व्यवस्था में काफी चौकसी बरती जा रही थी। हर स्थान पर गुप्तचर घूम रहे थे। किसी भी बाहर के आदमी को पूरी जानकारी प्राप्त होने पर ही नगर में प्रवेश की आज्ञा थी।

प्रभु महावीर व गोशालक अपनी धुन में जा रहे थे। वे नगर-सीमा पर पहुंचे। पहरेदारों ने परिचय मांगा। दोनों ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों को राजा के सैनिकों ने गिरफ्तार कर लिया। बंदी बनाकर राजसभा में राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। राजसभा में उस समय उत्पल नामक नैमित्तिक उपस्थित था। भगवान महावीर को देखते ही श्रद्धावश खड़ा हो गया और कहने लगा- "ये गुप्तचर नहीं हैं, राजा सिद्धार्थ के पुत्र धर्म चक्रवर्ती हैं। चक्रवर्ती जैसे इनके शरीर के लक्षणों को तो देखो। राजन् यह जगतगुरु हैं, देवों द्वारा पूज्यनीय हैं।"

उत्पल से परिचय पाकर राजा ने दोनों को सम्मानपूर्वक मुक्त किया। क्षमा याचना मांगी।

लोहार्गला से विहार कर प्रभु पुरिमताल (अयोध्या) पधारे। वहां शकटमुख उद्यान था। कुछ समय इस उद्यान में ध्यान किया। यहां आपका स्वागत वागुर श्रावक ने किया। यह १२ व्रती श्रमणोपासक था।

पुरिमताल से विहार कर प्रभु उन्नाग पधारे। फिर यहां से गौभूमि होते हुए राजगृह पधारे।

लगता है इस भ्रमण में प्रभु ने उत्तर प्रदेश के काफी नगरों, गांवों का भ्रमण किया होगा। वर्णन उन गांवों का है, जहां कुछ घटनाएं घटित हुई होंगी।

प्रभु महावीर चातुर्मास के लिए मगध की राजधानी राजगृह पधारे। वहां प्रभु ने चातुर्मासी तप किया। विभिन्न योग क्रियाएं सम्पन्न कीं। चातुर्मास पूर्ण होते ही आपने तप का पारणा किया।

नवम् वर्ष

इस वर्ष प्रभु महावीर का विहार मगध के विभिन्न अञ्चलों में हुआ। प्रभु महावीर ने सोचा- 'अभी मुझे कर्म की निर्जरा करनी है इसलिए अनार्य क्षेत्रों में विचरण उपयोगी रहेगा।' जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है कि इस समय का सचित्र वर्णन आचारांगसूत्र में उपलब्ध है।

इस विचार को क्रियान्वित करने के लिए प्रभु महावीर ने सर्वप्रथम राढ़ देश के वज्र भूमि जैसे

वर्द्धमान के शरीर का शिकार करते। वे प्रभु महावीर को शिकार की वस्तु समझकर उनके कोमल शरीर को कष्ट देते थे। वे जहां भी प्रभु महावीर को देखते, उन्हें घेर लेते। उनके शरीर पर हथियारों से प्रहार करते। उनके पीछे शिकारी कुत्ते लगाते। लाठी, पत्थरों से उन्हें पीटते। इन सब यातनाओं को वह सहर्ष सहते थे। वह इन यातनाओं का कारण अनार्य पुरूष-स्त्रियों को नहीं मानते थे। वह हिंसा का कारण अज्ञानता को मानते थे। अज्ञान सब पापों की जननी है।

जैसे मेरू पर्वत भूचाल में भी कम्पायमान नहीं होता है। इसी तरह प्रभु महावीर भी ध्यानस्थ खड़े रहते थे। वह विचार करते कि वे पुरूष-स्त्री भी मेरे मित्र हैं जो कि मेरी कर्म की जंजीरें तोड़ने में सहायक हो रहे हैं। प्रभु महावीर ने इस प्रकार के आचरण से सभी कषायों को क्षीण कर दिया।

अनार्य देश ऐसे क्षेत्र थे, जहां प्रभु महावीर को ठहरने को कोई आवास स्थान नहीं मिला वे प्रायः वृक्षों के नीचे ही ध्यान करते। यह नौवां चातुर्मास घूमते ही बीता। प्रभु ६ मास इन क्षेत्रों में कष्ट को झेलते घूमते रहे। उन्हें भोजन-पानी मिलने का प्रश्न नहीं था। भगवान पुनः अनार्य देश से आर्य देश पधारे।

दसवां वर्ष

प्रभु महावीर व मंखलि-पुत्र गोशालक सिद्धार्थपुर पहुंचे। वहां कुछ दिन रहने के पश्चात् वह कूर्मग्राम जा रहे थे। रास्ते में एक तिल के पौधे को देखकर गोशालक ने पूछा- "प्रभु! यह पौधा उत्पन्न होगा या नहीं? अगर उत्पन्न होगा, तो एक फली से कितने तिल के दाने प्राप्त होंगे?" प्रभु तो ज्ञानी थे। उन्होंने गोशालक के प्रश्न का समाधान करते हुए कहा- "यह पौधा जरूर फल देगा। फूल वाले पौधे की एक फली में सात तिल निकलेंगे।" गोशालक को प्रभु महावीर की बात का विश्वास न हुआ। उसने प्रभु महावीर की पीठ फेरते ही वह पौधा उखाड़ दिया।

दोनों आगे चले। कूर्मग्राम आया। उस ग्राम के बाहर वैश्यायन नामक एक तापस जिसने प्राणायाम दीक्षा अंगीकार की थी, धूप में औंधे मस्तक लटकता हुआ तप कर रहा था। धूप से व्याकुल हुई जटाओं से जुएं निकलकर धरती पर आ रही थीं। वह पुनः उन जुओं को उठाकर अपनी जटा में रख लेता।

गोशालक यह तमाशा देख रहा था। अपने स्वभाव के कारण उसने यहां भी झगड़ा खड़ा कर दिया। वह संन्यासी का मजाक करते हुए कहने लगा- "तू साधु है या जुओं का घर (स्थान)।"

संन्यासी को गोशालक के मजाक पर इतना क्रोध आया कि उसने अपनी शक्ति का प्रयोग तेजोलेश्या के रूप में किया। पर धन्य हैं करूणा पुंज प्रभु महावीर, जिन्होंने गोशालक जैसे अज्ञानी को शीतल लेश्या छोड़कर उसकी प्राण रक्षा की।

गोशालक तेजोलेश्या की शक्ति से अनभिज्ञ था। प्रभु महावीर की शक्ति का आभास उस वैश्यायन तापस को लग चुका था। उसने विनम्र भाव से प्रभु महावीर से कहा- "भगवन्! मैंने आपको जान लिया।

गोशालक इस संकेत को न समझ सका। वह संन्यासी को चिढ़ाने के लिए बोला- "यह जुओं का घर क्या कह रहा है?"

प्रभु महावीर ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा- "इसने तप-तेज से प्राप्त तेजोलेश्या की शक्ति का प्रयोग किया था, पर मेरी शीतलेश्या की शक्ति से तेजोलेश्या का प्रभाव क्षीण हो गया। इसलिए यह कह रहा है कि अगर मैं पहले जानता कि यह आपका शिष्य है, तो मैं कभी ऐसा अज्ञानपूर्ण कदम न

तेजोलेश्या की बात सुनकर गोशालक घबरा गया। उसे भय व आतंक सताने लगा। उसने प्रभु महावीर से पूछा- "प्रभु! यह तेजोलेश्या क्या होती है? इसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।"

सहज व सरल योगी प्रभु महावीर ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा- "कोई मनुष्य ६ मास तक निरन्तर छट्ठ तप के साथ सूर्य के सामने दृष्टि रखकर खड़ा आतापना लेता है, वह छट्ठम का पारणा भी मुट्ठीभर उड़द और चुल्लूभर गर्म पानी से करता है, उस तपस्वी को थोड़ी बहुत तेजोलेश्या प्राप्त हो जाती है।"

गोशालक को प्रश्न का उत्तर मिल गया था। अब वह तेजोलेश्या की प्राप्ति हेतु प्रयास जुटाने लगा।

प्रभु महावीर ने कुछ समय के बाद पुनः सिद्धार्थपुर विहार किया। जब वह तिल वाले स्थान से गुजर रहे थे तो गोशालक शंकित होकर कहने लगा- "आपकी भविष्यवाणी गलत निकली है वह पौधा तो उगा ही नहीं।"

भगवान महावीर को पता था कि गोशालक ने वह पौधा उखाड़कर कहीं और फेंक दिया है। वह पौधा वहीं पर वर्षा के योग से पुनः स्थापित हो गया था।"

भगवान महावीर ने उसी पौधे को दिखाते हुए कहा- "तेरे द्वारा उखाड़ा पौधा वह स्थापित है।"

गोशालक ने पौधे को देखा, तो उसे विश्वास न हुआ। वह तिल के पौधे के समीप गया। उसने एक फली तोड़ी। उसमें तिलों की संख्या सात थी। इस घटना ने गोशालक को नियतिवाद की ओर ज्यादा आकर्षित किया। उसे विश्वास हो गया कि इस प्रकार हर जीव मरकर पुनः उस योनि में उत्पन्न होते हैं।

अब गोशालक के मन में तेजोलेश्या की प्राप्ति की चाह इतनी बढ़ गई कि उसने अपने गुरु प्रभु महावीर को छोड़ दिया। वह श्रावस्ती नगरी आया। वही श्रावस्ती आगे जाकर नियतिवाद के प्रचार का केन्द्र भी बना। उसने वहां एक हालाहला नाम की सम्पन्न कुम्हारिन के यहां अड्डा जमाया। वहीं रहकर वह तेजोलेश्या की साधना प्रभु द्वारा बताई विधि अनुसार करने लगा।

इस प्रकार गोशालक ने ६ मास निरन्तर छट्ठम तप किया। सूर्य के सामने आतापना ली। प्रभु महावीर के बताए ढंग के अनुसार पारणा किया। उसे इस तप के प्रभाव से तेजोलेश्या प्राप्त हो गई।

तेजोलेश्या का अब प्रयोग करना शेष था। एक दासी कुएं से पानी भर रही थी। बेचारी उस दासी पर गोशालक ने तेजोलेश्या का दुरूपयोग किया। दासी के प्राण जाने का कारण गोशालक की शक्ति बनी।[१८] उसने शोण, कनिन्द्र, कार्णीक, अहिल्या, अग्निवेश्या और अर्जुन से यहीं रहकर निमित्तशास्त्र के कुछ अंश पढ़े, जिससे वह सुख-दुख, लाभ-हानि, जीवन-मरण इन बातों में सिद्ध वचन नैमित्तिक बन गया।

तेजोलेश्या व निमित्तशास्त्र के कारण गोशालक का प्रभाव इतना बढ़ा कि उसे मानने वालों की संख्या करोड़ों में पहुंच गई। वह साधारण भिक्षु से अब एक धर्माचार्य के रूप में प्रतिष्ठित था।[१९] वह स्वयं के आजीवक सम्प्रदाय का तीर्थंकर कहलाता था। उसका मुख्य केन्द्र श्रावस्ती हालाहला कुम्हारिन का घर बन गया।

भगवतीसूत्र के १५वें शतक में आजीवक सम्प्रदाय के भिक्षुओं का रहन-सहन व गोशालक के जीवन का अन्तिम काल का वर्णन आया है, जिसका वर्णन आगे होगा। इतना जरूर है कि वह भगवान महावीर के तप के १०वें वर्ष में स्वतन्त्र विचरने लगा। उसके सम्प्रदाय को कई राजकुमारों ने भी अपनाया, पर साधारणतः निम्न कहा जाने वाला वर्ग ही उसका उपासक था।

श्रावक को प्रभावित करता है।

सिद्धार्थपुर से भगवान महावीर वैशाली पधारे। एक दिन वैशाली के बाहर प्रभु ध्यान लगाए खड़े थे। उस समय नगर के बालक जंगल में खेलने आ गए। उन्होंने प्रभु महावीर को पिशाच समझा। वह प्रभु महावीर को भिन्न-भिन्न ढंगों से सताने लगे।

इसी समय पिता राजा सिद्धार्थ का मित्र गणराज शंख भी अचानक उस जंगल में आ गया। उन्होंने बालकों को फटकार लगाई और जंगल से भगा दिया।[६०]

प्रभु का नौका विहार

चोराक सन्निवेश से प्रभु महावीर वैशाली पधारे थे। वैशाली से आप वाणिज्यग्राम पधारे। बीच में गण्डकी नदी पड़ती थी।

भगवान महावीर ने उसे नौका द्वारा पार किया। उसे पार करके किनारे पहुंचे। नाविक ने किराया मांगा। प्रभु महावीर मौन रहे। नाविक को गुस्सा आ गया। उसने प्रभु महावीर को गर्म रेत पर खड़ा कर दिया। संयोगवश उसी समय शंखराज का भांजा "चित्र" जो राजदूत बनकर कहीं जा रहा था, वहां आ गया। उसने नाविक को प्रभु महावीर का परिचय देकर छुड़ाया।[६१]

भगवान महावीर वहां से वाणिज्यग्राम पहुंचे। वाणिज्यग्राम में एक १२ व्रती श्रावक आनन्द रहता था। उसे उसी समय अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई थी। वह महावीर के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने प्रभु से कहा- "भगवन्! आपको थोड़े ही समय में केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न होगा।"[६२]

आचार्य देवेन्द्र मुनि जी का कहना है- "यह आनन्द, उपासकदशांगसूत्र के प्रथम श्रावक आनन्द से भिन्न है, हालांकि गांव व नाम तो एक है। अवधिज्ञान की बात वहां भी है। पर वह आनन्द तो प्रभु महावीर के तीर्थंकर जीवन में आया था। उस आनन्द ने तो प्रभु महावीर से १२ व्रत ग्रहण किए थे।

अवधिज्ञान होने पर गणधर गौतम का संशय दूर किया। इस आनन्द का वर्णन मूल सूत्र में है। वैसे भी आनन्द नाम के कई श्रावकों का वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध है।

वाणिज्यग्राम से प्रभु महावीर सीधे श्रावस्ती नगरी पहुंचे। १०वां वर्षावास वहीं सम्पन्न हुए। वहां विभिन्न प्रकार की तप व साधनाओं की क्रियाएं सम्पन्न कीं।[६३]

ग्यारहवां वर्ष

प्रभु महावीर की साधना का यह वर्ष बड़ा ही रोमांचकारी व दिल को हिला देने वाली घटनाओं से भरा पड़ा है। वर्षाकाल समाप्त होते ही प्रभु महावीर स्वतन्त्र भ्रमण के लिए सानुलद्वीप सन्निवेश पधारे। भद्रा, महाभद्रा व सर्वतोभद्रा प्रतिमाएं नामक तप की आराधना की।[६४]

चारों दिशाओं में चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना भद्र प्रतिमा है।[६५] इस प्रतिमा की आराधना करने वाला प्रथम दिन पूर्व की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है। रात्रि को दक्षिण दिशा की ओर मुख कर कायोत्सर्ग ध्यान लगाता है।

दूसरे दिन पश्चिम दिशा की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है। रात्रि को उत्तर की ओर मुख कर कायोत्सर्ग तप करता है। भगवान ने भद्र प्रतिमा के पश्चात् ही महाभद्र प्रतिमा की आराधना की। उसमें चारों दिशाओं में एक दिन-रात्रि का कायोत्सर्ग किया जाता है। भगवान महावीर ने चार अहोरात्रि में इस

इसके पश्चात् सर्वतोभद्र में १० दिन-रात्रि लगते हैं। इस प्रतिमा में १० दिशाओं की ओर मुख करके कायोत्सर्ग तप किया जाता है। इस प्रकार भगवान ने १६ दिन-रात्रि में सतत ध्यान कर उपवास के साथ इन प्रतिमाओं की आराधना की।[७]

तप की समाप्ति पर आप तप के पारणे के लिए आनंद गाथापति के यहां पधारे। आनंद की एक दासी, जिसका नाम बहुला था, बचा-खुचा अन्न फेंकने बाहर आ रही थी। सामने प्रभु महावीर आ गए। दासी ने पूछा- "भिक्षु! क्या इच्छा है, बताओ?" प्रभु महावीर ने दोनों हाथ पसार दिए। दासी समझ गई कि यह भिक्षु भिक्षा की याचना कर रहा है। उसने बचा खुचा अन्न भक्तिपूर्वक प्रभु के हाथों में रख दिया। सुपात्रदान से देवों ने जय-जयकार की। प्रभु महावीर को अपनी साधनाकाल में कैसा भोजन मिला, यह इसका उदाहरण जो है।

सानुलद्विप से भगवान महावीर ने दृढ़ भूमि की तरफ विहार किया। उस नगर के बाहर स्थित पोलास चैत्य में अट्ठम तप कर रातभर एक अचित्त पुद्गल पर निर्निमेष दृष्टि से ध्यान किया। भगवान महावीर की इस निर्मल दृष्टि और ध्यान से स्वर्ग का इन्द्र बहुत प्रभावित हुआ।

संगम द्वारा उपसर्ग

स्वर्ग में देवों की सभा लगी हुई थी। देवाधिदेव इन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने प्रभु महावीर के ध्यान की प्रशंसा करते हुए कहा- "ध्यान और धैर्य में भगवान महावीर का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। मनुष्य तो एक तरफ, किसी देव में इतनी शक्ति नहीं कि प्रभु महावीर को उनकी साधना व ध्यानमार्ग से डिगा सके।"

उस सभा में एक संगम नामक देव भी बैठा हुआ था। उससे प्रभु महावीर की यह प्रशंसा सहन न हुई। वह सोचने लगा-"इन्द्र ने प्रभु महावीर की प्रशंसा कर समस्त देवताओं का अपमान किया है। मैं अभी धरती पर जाता हूं और वर्द्धमान महावीर को उनके ध्यान से गिराकर इन्द्र को झूठा सिद्ध करूंगा। आखिरकार मनुष्य चाहे कितना शक्तिशाली हो, वह देवताओं की शक्ति के आगे टिक नहीं सकता। मैं अभी जाकर उन्हें ध्यान से पथभ्रष्ट करता हूं।"

यह प्रतिज्ञा कर वह पोलास चैत्य में आया। प्रभु महावीर को ध्यान में विचलित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कष्ट देने लगा। उसने प्रभु महावीर को एक रात्रि में २० उपसर्ग दिए जिनका विवरण दिल हिला देने वाला है।

जैन परम्परा में यह देव प्रभु को निरन्तर छह महीने कष्ट देता है। इन कष्टों का विवरण हम निम्न पंक्तियों में करेंगे-

संगम ने प्रभु महावीर को इतने भयानक उपसर्ग दिए, जो एक महावीर ही सहन कर सकता है। साधारण मानव तो इन उपसर्गों की कल्पना भी नहीं कर सकता। संगम के उपसर्ग प्रभु के कर्मों की निर्जरा करने में सहायक बने।

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने- 'महावीर : एक अनुशीलन' नामक ग्रंथ में इन उपसर्गों पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह पृष्ठ ३३२ से ३३४ पर लिखते हैं-

"गगन-मंडल से तरूण सुन्दरियां उतरीं। हाव-भाव कटाक्ष करती हुई प्रभु महावीर से संभोग

नहा हुआ। वह सुमरू का तरह आडग रह। सगम न एक रात्र म बास विकट उपसग दिए व इस प्रकार हैं-

(१) सर्वप्रथम उसने प्रलय काल की तरह धूलि की भीषण वृष्टि की। उस धूलि से प्रभु महावीर के कान, नेत्र, नाक सर्वथा सन गए।

(२) जब प्रभु महावीर पर पहले उपसर्ग का कोई कष्ट न हुआ तो उसने वज्रमुखी चींटियां उत्पन्न कीं जिन्होंने प्रभु महावीर के शरीर को खोखला कर दिया।

(३) मच्छरों के झुण्ड बनाए और उन्हें महावीर पर छोड़ा। मच्छर प्रभु महावीर का खून चूसने लगे।

(४) तीक्ष्णमुखी दीमक उत्पन्न की। वह महावीर के शरीर पर चिपट गई। उन्हें काटने लगी।

(५) जहरीले बिच्छुओं की सेना तैयार की। उन्होंने एक साथ प्रभु महावीर के शरीर पर आक्रमण किया। अपने पैने डंक से उन्हें डसने लगे।

(६) नेवले छोड़े। वे भयंकर शब्द करते हुए महावीर पर एक साथ टूट पड़े। उनके मांस पर भिन्न-भिन्न करने लगे।

(७) विषधर सर्प छोड़े, जिनके दांत नुकीले थे। वे महावीर को काटने लगे।

(८) चूहे उत्पन्न किए। वे अपने तीक्ष्ण दांतों से प्रभु महावीर को काटने लगे। साथ में अपने मल-मूत्र का विसर्जन प्रभु महावीर पर करने लगे। कटे हुए घाव पर यह मूत्र नमक की तरह काम करता था।

(९) लम्बी सूड़ वाले हाथी तैयार किए। उन्होंने महावीर को बार-बार आकाश में उछाला और गिरने पर हर बार रोंद डाला। उनकी छाती पर तीखे दांतों से प्रहार किया।

(१०) हथिनियां बनाई उन्होंने भी प्रभु के शरीर को रोंदा।

(११) भयंकर पिशाच का रूप बनाया और कर्ण कटु किलकारियां करता हुआ, हाथ में पैनी बरछी लेकर महावीर पर मारा। अपनी संपूर्ण शक्ति से उन पर आक्रमण किया।

(१२) विकराल बनकर वज्र के समान दांतों से और नाखूनों से प्रभु महावीर के शरीर को विदारण किया।

(१३) राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला का रूप बनाया। फिर करूणामय स्वर से इन दोनों के मुख से कहलाया- "बेटा! हमें इस वृद्धावस्था में अकेले क्यों छोड़ चले हो?"

(१४) संगमदेव ने अगला भयंकर उपद्रव यह किया कि उसने प्रभु महावीर के दोनों पांव के मध्य में आग जलाई और उस पर खीर पकने को रख दी। पर प्रभु महावीर को कोई शक्ति गिरा नहीं सकी। वह तो अकम्प, अडोल ध्यान में लीन रहे।

(१५) संगम ने अगला कार्य यह किया कि उसने बहुत सारे पक्षियों के अस्थि-पिंजर इकट्ठे किए। उन्हें प्रभु महावीर के शरीर के ऊपर लगा दिया। पक्षी आए। उन्होंने उन पिंजरों को अपनी चोंच और पंजों से दन्त-विक्षत करने का प्रयत्न किया।

(१६) अगले कदम में जब संगम ने देखा- "कोई भी उपसर्ग प्रभु महावीर का ध्यान से डिगा नहीं सका है तो उसने भयंकर आंधी चलाई। आंधी के प्रकोप से वृक्ष अपनी जड़ों से उखाड़ने लगे। मकान की छतें उड़ने लगीं। प्रभु महावीर भी इस आंधी के प्रभाव से कई बार गिरे या उड़े।

(१७) चक्राकार पवन चली। प्रभु महावीर उसमें चक्र की तरह घूमने लगे।

(१८) फिर उसने कालचक्र चलाया। प्रभु महावीर घुटने तक भूमि में धंस गए। किंतु फिर भी ध्यान भंग

अनुकूल परीषह उपस्थित किए।

(१९) उसने सर्वप्रथम एक देव विमान की रचना की। उसमें स्वयं बैठकर वह प्रभु महावीर के पास आकर कहने लगा- "आपको स्वर्ग चाहिए या अपवर्ग। मैं आपकी हर इच्छा पूरी करूंगा। आप मेरे साथ विमान में बैठिए।"

(२०) उसने अन्तिम उपसर्ग दिया- अप्सराओं का प्रलोभन। इंसान की कमजोरी है स्त्री। स्त्रियों के हाव भाव साधक को साधना से गिरा देते हैं। इन स्वर्ग की अप्सराओं ने पहले सुन्दर नृत्य किए। भोग-विलास के साधनों की सुन्दर रचना की। प्रभु स्थिर रहे। प्रभु महावीर तो प्रभु महावीर थे। उनको गिराना तीर्थंकर को गिराना था। तीर्थंकर परमात्मा को गिराने की शक्ति किसी भी प्राणी में तीन लोक व तीन काल में नहीं होती।

इन उपसर्गों का अध्ययन करने से हमे पता चलता है कि प्रभु महावीर अपनी देह के ममत्व से कितने दूर थे। वह विदेह थे।

यहां आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने एक प्रश्न का समाधान निकालने की सुन्दर चेष्टा की है। प्रश्न उठ सकता है कि संगम ने अनेक रूप बनाकर प्रभु महावीर के शरीर को जर्जर और घावों से भर दिया, तो सारे घाव किस प्रकार मिटे?

इस प्रश्न के समाधान में आचार्यश्री लिखते हैं कि तीर्थंकरों के शरीर में एक विशिष्ट प्रकार की संरोहण शक्ति होती है जिससे उनके शरीर का घाव उसी समय ठीक हो जाता है जब घाव बनता है। जैसे वृद्ध पुरूष का घाव भरने में समय लगता है। तरूण पुरूष का घाव शीघ्र-अतिशीघ्र भर जाता है। उसी तरह तीर्थंकर परमात्मा के शरीर की रचना होती है।[६८]

बीस भयंकर उपसर्ग सहने पर भी उनके मुख पर गुस्से-भय का निशान नहीं था। उनका शरीर तो मुस्कराहट दे रहा था। मुख कुन्दन की तरह ऐसा चमक रहा था, जैसा मध्याह्न का सूर्य हो।

संगम के कष्टों का यह अंत नहीं था। जिसकी शुरूआत उसने एक रात्रि में २० भयंकर उपसर्ग देकर की थी। प्रभु महावीर की आत्मा तो ध्यानस्थ थी। उनकी यात्रा तो अन्दर की यात्रा थी। बाहर से वह अपने शरीर का मोह छोड़ चुके थे। जब मोह ही छूट गया, तो फिर कोई शरीर आदि की सुरक्षा का ध्यान क्या रखेगा?

शायद ये उपसर्ग उनकी साधना के फल की कसौटी थे। एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि प्रभु महावीर राजकुमार थे। उनका शरीर बहुत कोमल था। रूप सुन्दर था। पर आत्मा से वह अभय थे। डरना उनका स्वभाव नहीं था। शायद इसी स्वभाव के कारण उनका शरीर इतने कष्ट सहने में सक्षम हो सका।

इन उपसर्गों के अध्ययन करने से पता चलता है कि संगम ने ज्यादातर प्रतिकूल ही कष्ट दिए। २-३ उपसर्ग अनुकूल कहे जा सकते थे, जिससे शरीर को कष्ट न पहुंचा हो। पर प्रभु महावीर को शरीर से ज्यादा आत्मा की चिंता थी। आत्म चिंतन में डूबे रहने के कारण उन्हें कोई स्वर्ग का प्रलोभन भी डिगा न पाया।

इस प्रकार रात्रि व्यतीत हो गई। सूर्योदय होते ही प्रभु महावीर का जब ध्यान सम्पन्न हो गया तो उन्होंने आगे की ओर बढ़ना शुरू किया।

जान का दुःख था। प्रभु महावीर का पथ से गिरान के लिए वह प्रभु के साथ हो लिया।

प्रभु बालुका (नालुका), सुभोग, सुच्छेत्ता, मलय और हस्तिशीर्ष आदि नगरों में जहां पधारे, संगम कष्ट देता रहा। वह अपने अभद्र व्यवहार से प्रभु महावीर को कष्ट पहुंचाता रहा।[88] प्रभु महावीर धन्य थे। उनके चेहरे पर कोई थकान नहीं थी, कोई शिकायत नहीं थी। उनकी सरलता, सहजता, विनय में कोई कमी नहीं आई थी। उनके पाप तो अल्प रह गए थे। मंजिल नजदीक थी। प्रभु महावीर अपने भविष्य को जानते थे। इसीलिए उन्होंने हर परीषह को कर्मफल मानकर सहन किया।

प्रभु पर चोरी का आरोप

एक बार प्रभु महावीर तोसलि गांव के उद्यान में ध्यानस्थ थे। वहां संगम जैन श्रमण की वेशभूषा धारण कर गांव में चोरी करने गया। उसने घरों में सेंध लगाई। सेंध लगाते ही वह पकड़ा गया। लोगों को वह कहने लगा- "मुझे पकड़कर क्यों दण्डित करते हो? जिसकी आज्ञा से मैं यह कार्य करता हूं, उस मेरे गुरू को क्यों नहीं पकड़ते? मेरे गुरू आज बाहर उद्यान में तप कर रहे हैं। यह चोरी का कार्य मैं उनके लिए करता हूं।"

संगम की बात का लोगों को सहज विश्वास हुआ। वे उद्यान में गए। वहां प्रभु महावीर को ध्यानस्थ देखा। उन्होंने उन्हें रसियों से कसकर बांध दिया। वे गांव की ओर आ रहे थे। तब महाभूतिल ऐन्द्रजालिक ने प्रभु वर्द्धमान को पहचान लिया। उसने लोगों को बताया- "यह पुरूष कोई चोर नहीं, ये तो सिद्धार्थ नन्दन क्षत्रियकुण्डग्राम नरेश के सुपुत्र हैं। सत्य की तलाश में इन्होंने घर-परिवार छोड़ दिया है। पर कल्याणार्थ व आत्म-कल्याणार्थ साधनारत हैं। यह कोई चोर नहीं हैं। सो इन्हें छोड़ दो।"

ऐन्द्रजालिक की बातों का लोगों पर गहरा असर हुआ। उन्होंने प्रभु महावीर से क्षमा मांगते हुए उनको छोड़ दिया। झूठी बात कहने वाले वेशधारी की तलाश की, पर उसका कोई पता नहीं चला।[90]

भगवान मोसली गांव में

प्रभु महावीर यहां से मोसली गांव पधारे। वहां उद्यान में ध्यानस्थ हुए। यहां भगवान महावीर पर तस्कर होने का आरोप लगा। राजपुरूषों ने प्रभु महावीर को पकड़ा और राज्य दरबार में पेश किया। इसी दरबार में राजा सिद्धार्थ के मित्र सुमागध नामक राष्ट्रीय (प्रांत का प्रमुख) बैठा था। उन्होंने प्रभु महावीर को देखकर उनका अभिवादन किया। प्रभु महावीर का परिचय राजा को दिया। राज्य परिषद ने प्रभु महावीर को सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिया।[91]

प्रभु महावीर को फांसी की सजा

दुष्ट संगम प्रभु महावीर को साधना से डिगाने में एड़ी-चोटी का जोर लगा रहा था। वह कोई भी साधन नहीं छोड़ना चाहता था। प्रभु को उसने शारीरिक व मानसिक यातनाएं दीं। प्रभु महावीर के चेहरे पर शोक की लहर न थी। प्रभु साधना हेतु पुनः तोसली गांव आए। यहां संगम ने ऐसी काली-करतूत की कि समस्त देवलोक के देव भी संगम की करतूत पर शर्मिन्दा हो गए। उसने चोरों के हथियार लाकर प्रभु महावीर के पास रख दिए। वहां की जनता ने प्रभु महावीर को तस्कर समझकर पकड़ लिया।

उनसे परिचय पूछा गया। पर प्रभु महावीर तो मौन-साधना में थे, वह कुछ नहीं बोले।

उसने प्रभु महावीर को फांसी की सजा सुनाई। प्रभु महावीर के गले में फंदा डाला गया। यह सत्य को फांसी देने की चेष्टा थी। पर सत्य सत्य था। फांसी के लिए ज्यों ही नीचे का तख्ता सरकाया गया, तत्काल फंदा टूट गया।

दूसरी बार राजपुरूषों ने फंदा डाला, पर इस बार भी वही हुआ जो पहली बार हुआ था। राजा व राजपुरूषों ने फांसी देने वाले उपकरणों का निरीक्षण किया। पर उपकरण तो अपनी जगह सही थे। इस प्रक्रिया को पांच बार पुनः दोहराया गया। इस बार भी फंदा टूट गया। सात बार फंदा टूटने से राजपुरूष चकित थे। इस बार क्षत्रिय ने अपने राजपुरूषों से सारी बात पूछी। राजपुरूषों ने सर्व सत्य बता दिया। क्षत्रिय ने प्रभु महावीर की महानता को परख लिया। उसने सोचा-"यह मौनधारी पुरूष मृत्यु से भी नहीं डरा। यह तो कोई महान साधक है। हमें इससे किए गए दुर्व्यवहार की क्षमा मांगनी चाहिए।" इस प्रकार उस क्षत्रिय ने प्रभु महावीर की महानता को पहचानते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिया।[१२]

संगम प्रभु महावीर के पीछे इस प्रकार लगा हुआ था जैसे शिकार के पीछे कुत्ता। प्रभु महावीर जहां भी पधारते, संगम अपनी देव शक्ति के बल पर पहले से वहां पहुंच जाता। प्रभु महावीर कहां झुकने वाले थे। मोसली से प्रभु महावीर सिद्धार्थपुर आए। संगम ने वहां भी उन्हें चोरी के आरोप में पकड़वा दिया।

यहां घोड़े का एक व्यापारी कोशिक रहता था। वह प्रभु महावीर के गृह-त्याग की घटना का जानकार था। जब उसे पता चला कि राजपुरूषों ने प्रभु महावीर को चोर समझकर पकड़ लिया है और उन्हें शीघ्र दण्डित करने जा रहे हैं, तो वह शीघ्रातिशीघ्र राजदरबार में पहुंच गया। राजा को बताया- "यह तो दिव्य पुरूष वर्द्धमान हैं। क्षत्रियकुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के नन्दन हैं। जगत-कल्याण के लिए इन्होंने गृह-त्याग किया है। इन्हें चोर मत समझो। यह तो लोगों के भले के लिए राजपाट छोड़कर संन्यासी बने हैं।"

कोशिक, जो घोड़ों का व्यापारी था, राज्यसभा में अच्छे स्थान का स्वामी था। उसका जीवन आदर्श था। आदर्श पुरूष ही महात्मा लोगों की पहचान रखते हैं। दुष्टों को दुष्टों की पहचान होती है। राजपुरूष को कोशिक की बात का विश्वास हो गया। उन्होंने प्रभु महावीर से क्षमा मांगते हुए सम्मान पूर्वक उन्हें मुक्त कर दिया।[१३]

इस तरह हम देखते हैं कि भगवान महावीर ने संगम के हर उपसर्ग को हर्ष से झेलने का मन बना लिया था। यह बात आगे की घटनाओं में सिद्ध हो जाती है।

संगम के उपसर्ग निरंतर जारी थे। इन उपसर्गों को सहने वाले राजकुमार वर्द्धमान का शरीर, यह सोचकर हृदय कांप उठता है कि प्रभु महावीर ने लगातार यह कष्ट कैसे सहे होंगे? इन उपसर्गों से प्रभु महावीर के समय के लोगों की मनोवृत्ति का पता चलता है।

संगम की परीक्षाएं अभी संपूर्ण नहीं हुई थीं। प्रभु महावीर सिद्धार्थपुर के भंयकर कष्टों को झेलते हुए ब्रज गांव में आए। यह ब्रज गांव मथुरा के पास पड़ने वाले गांवों से भिन्न दिखता है। ब्रज गांव में उस दिन कोई नगर उत्सव था। हर घर में खीर बनी हुई थी। प्रभु महावीर अपनी तपस्या के पारणे के लिए भिक्षा मांगने निकले। संगम उस गांव में पहुंच गया। उसने प्रभु महावीर के आगमन से पहले गांव की सारी खीर को दूषित-अनेषणीय कर दिया।

प्रभु महावीर भिक्षा के लिए घर-घर गए। न लेने योग्य पदार्थ जानकर उन्होंने कोई अन्न ग्रहण नहीं

संगम द्वारा क्षमा याचना

संसार में अनेक राजपुरुषों को मनुष्यों ने तो कष्ट दिए हैं, पर श्रमण भगवान महावीर को तो देवों ने भी कष्ट दिए हैं। छह महीने तक संगम के कष्ट जारी रहे। पहले गोशालक मनुष्य के रूप में प्रभु महावीर के लिए मुसीबत बना रहा। गोशालक के जाते ही संगम देव प्रभु महावीर की साधना में विघ्न डालने आ गया। प्रभु महावीर को उसने न निर्विघ्न ध्यान करने दिया, न पारणे हेतु भोजन करने दिया। प्रभु महावीर को ध्यान से च्युत करने के लिए अनगिनत परीषह उसने प्रभु महावीर के सामने उपस्थित किए। प्रभु महावीर की अडोलता के सामने समस्त देव-बल हार गया।

प्रभु महावीर ने इस सहनशीलता से यह दिखाया कि मनुष्य जन्म कितना श्रेष्ठ है, यह विषय विकारों में गंवाने के लिए नहीं है। मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। देव व नारकी तो कर्मबन्धन के अनुसार क्रमशः सुख व दुःख भोगते हैं। मनुष्य कर्मशील है, कर्म-प्रधान है। सभी योनियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ है क्योंकि इसी योनि में रहकर मनुष्य चाहे तो स्वर्ग या मोक्ष पा सकता है और विपरीत कर्म के द्वारा नरक भी पा सकता है। मनुष्य जन्म में ही धर्म किया जा सकता है। देवता भी धर्म करने में असमर्थ हैं। देवता किसी भी प्रकार की साधना नहीं करते। वे पूर्व संचित कर्म द्वारा सुखों का उपार्जन करते हैं। लम्बे समय तक भोगते हैं। नरक व स्वर्ग दोनों भोग की भूमियां हैं। कर्मभूमि तो यह संसार है, जहां करनी व भरनी साथ साथ चलती हैं।

जब संगम देव ने देखा कि मेरे द्वारा दिए गए उपसर्गों से प्रभु महावीर न तो साधना से डगमगाए हैं, न इनके चेहरे पर घबराहट का निशान है, न ही मेरे प्रति क्रोध है। अब संगम ने अवधिज्ञान ने देखा तो पाया कि मेरे कष्ट देने से तो प्रभु महावीर का मनोबल पहले से ज्यादा दृढ़ हो गया है। उसे अपने किए पर पश्चाताप हुआ कि मैंने देवराज इन्द्र की बात को सत्य क्यों न माना? अब वह प्रत्यक्ष रूप में प्रभु महावीर के सम्मुख प्रस्तुत हुआ और प्रभु महावीर से क्षमा मांगते हुए कहने लगा- भगवन्! देवराज इन्द्र ने जो आपके सम्बन्ध में कहा था, वह पूर्ण सत्य है। मैं भग्न प्रतिज्ञ हूं। आप सत्य-प्रतिज्ञ हैं। अब आप प्रसन्नता से भिक्षा के लिए पधारिए। मैं किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएं उपस्थित नहीं करूंगा।[४४]

''मैंने छह मास आपको अनेक प्रकार के भयंकर कष्ट दिए हैं, जिसके कारण आप अच्छी प्रकार से साधना नहीं कर सके हैं। अब आनन्द से साधना कीजिए। मैं जा रहा हूं। अन्य देवों को भी ऐसा करने से रोकूंगा। वे आपको कष्ट नहीं देगें।''

संगम की बात का उत्तर देना महावीर प्रभु ने जरूरी समझा। उन्होंने कहा- ''हे संगम! मैं किसी की प्रेरणा से प्रेरित होकर या किसी के कथन को संकल्प में रखकर तप नहीं करता। मुझे किसी भी प्रकार के आश्वासन की जरूरत नहीं है।''

इतने कष्ट झेलने वाले प्रभु महावीर का संगम को दिए गए मार्मिक उत्तर से सिद्ध होता है कि उनका शरीर का मोह इतना छूट चुका था कि कोई देव, दानव भी उन्हें कष्ट पहुंचाने में असमर्थ था। बीस उपसर्गों के बाद का समय कहां बीता। इस छह मास का वर्णन किसी भी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। यह कोई विचारणीय प्रश्न नहीं हो सकता है कि इतने समय में प्रभु महावीर की साधना में कोई भी उल्लेखनीय उपसर्ग न आया हो। इसलिए किसी भी ग्रंथ में प्रभु महावीर के इन छह माह का वर्णन नहीं।

महत्वपूर्ण घटना की तरफ उनका ध्यान दिलाया है। "संगम जब क्षमा मांगकर जाने लगा तो प्रभु महावीर की आंखों में आंसू आ गए। संगम को प्रभु महावीर की आंखों में आंसू देखकर हैरानी हुई।" उसने प्रश्न उठाया है- "प्रभु! आप जैसे महाश्रमण की आंखों में आंसू क्यों हैं? क्या कोई विकट वेदना है?"

प्रभु महावीर ने कहा- "संगम! यह आंसू इसलिए नहीं आए कि तुमने मुझे उपसर्ग दिए। उपसर्ग तो मेरे साधक जीवन की कसौटी है। आंसू इसलिए आए हैं कि छह मास तूने मुझे परीषह दिए। तूने अज्ञान अवस्था में अपनी आत्मा का इतना पतन कर लिया है कि मैं जब भी तुम्हारे अंधकारपूर्ण भविष्य को देखता हूं तो सोचता हूं कि एक अबोध जीव मेरे कारण कष्ट उठाएगा। नरक की यातनाएं झेलेगा।"

"जिस श्रमण के निमित्त हजारों प्राणी कर्मबन्धन से मुक्त होते हैं वही साधक किसी प्राणी के कर्मबंध का निमित्त बने और कोई उसके कारण दुःख पाए, यह आंसू बहाने की बात है। संगम! जीव अज्ञानता में कर्मबंध कर तो डालता है, पर ये ही कर्मबंधन उसके लिए महान दुःखदायी होते हैं।

प्रभु महावीर की बात सुनकर संगम का अहंकार नष्ट हो गया। उसने देखा कि प्रभु महावीर की महानता, सहनशीलता के समक्ष कोई जीव न महान् है न सहनशील। मैंने इन्द्र की बात पर व्यर्थ अविश्वास किया। संगम स्वर्ग में गया। उसके भयंकर दुष्कृत्य पर इन्द्र अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसकी भर्त्सना करते हुए इन्द्र ने संगम को देवलोक से निष्कासित कर दिया। वह अपने देव-परिवार के साथ मेरु पर्वत की चूलिका पर रहने लगा।[७१]

संगम जा चुका था। प्रभु महावीर दूसरे दिन पुनः ब्रज गांव में पधारे। पूरे छह मास के बाद एक बूढ़ी ग्वालिन वत्सपालक से भोजन ग्रहण कर तप का पारणा किया। उसने प्रसन्नतापूर्वक प्रभु महावीर को पायस रस दिया।

पुनः श्रावस्ती में

यहां से प्रभु महावीर क्रमशः आलंभिया, श्वेताम्बिका, श्रावस्ती पधारे।

उन दिनों श्रावस्ती में स्कन्द महोत्सव चल रहा था। लोग उत्सव में इतने व्यस्त थे कि भगवान महावीर की तरफ किसी ने ध्यान न दिया। सारा गांव स्कन्द के मन्दिर में इक्ट्ठा हो गया था। भक्तजन देव मूर्ति को वस्त्र अलंकार से सजाने में लगे हुए थे। मूर्ति सजाई गई। उसे रथ में बिठाने जा रहे थे कि मूर्ति स्वयं चलने लगी। भक्तों के आनन्द का पार न रहा। वे समझे कि देव स्वयं रथ पर चढ़ने जा रहे हैं। हर्ष से नारे लगाते सब मूर्ति के पीछे चलने लगे। मूर्ति उसी उद्यान में पहुंची, जहां प्रभु महावीर ध्यानस्थ थे। मूर्ति प्रभु महावीर के चरणों में गिर पड़ी। लोगों ने हर्षनाद किया। उन्होंने प्रभु महावीर को देवाधिदेव मानकर पूजा भक्ति की। प्रभु महावीर की महिमा का गुणगान सारे गांव में फैलाया।

श्रावस्ती से कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला आदि नगरों में घूमते हुए प्रभु महावीर चातुर्मास को सम्पन्न करने के लिए वैशाली नगरी पधारे। यो वैशाली प्रभु का ननिहाल था, पर साधनाकाल में वह कभी भी किसी परिजन से नहीं मिले। वैशाली के बाहर कामवन नाम का उद्यान था। वहां इसी नाम का मन्दिर था। आवश्यक चूर्णिकार ने यह चातुर्मास मिथिला का लिखा है, पर अधिकांशतः प्राचीन व आधुनिक इतिहासकार यह चातुर्मास वैशाली का ही मानते हैं। आचार्य देवेन्द्र मुनि जी भी चूर्णिकार के

जीर्ण सेठ व पूरण सेठ

वैशाली नगरी भारत की प्राचीनत्तम नगरियों में से एक है। इसका वर्णन महर्षि बाल्मीकिकृत रामायण में भी आया है। प्रभु महावीर के समय तो यह ४४०४ गण राजाओं की राजधानी थी। इन सबके श्रमणोपासक चेटक थे, जो महान शूरवीर थे। महात्मा बुद्ध ने वैशाली को धरती का स्वर्ग और वैशाली निवासियों को देवता कहा है। वैशाली अपनी सम्पन्नता में भी प्रसिद्ध थी। यहां करोड़पति श्रेष्ठी रहते थे। आम्रपाली यहां की नगर वधु थीं, जिसने महात्मा बुद्ध को निमन्त्रण दिया। आम्रपाली ने अपना सारा उद्यान बुद्ध को दान कर दिया था। वह स्वयं भिक्षुणी बनी थीं। राजा चेटक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का कट्टर अनुयायी था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह अपनी सभी राजकुमारियों की शादी जैन राजाओं के साथ सम्पन्न करेगा। उसके चरित्र का वर्णन भगवतीसूत्र में भी उपलब्ध है। उस नगरी में एक सेठ रहता था। कभी वह बहुत अमीर था, पर गरीब हो गया था। यह पैसा, जिसका नाम माया है, छाया की तरह आता-जाता है। माया का एक नाम चंचला है। यह चलती रहती है। कभी यह सेठ इतना सम्पन्न था कि इसे नगरसेठ माना जाता था। पर सारे दिन एक से नहीं रहते। एक दिन ऐसा आया कि लक्ष्मी उस सेठ से रूठ गई। वह श्रमणोपासक सेठ था। धन की कीमत व सदुपयोग वह जानता था। धन के आने-जाने का उसे गम नहीं था। वह तो प्रभु महावीर का परम भक्त था। इतना गरीब हो जाने पर भी वह लोगों के हृदय में अपने गुणों के कारण राज्य करता था। लोग उसे "जीर्ण" सेठ कहते थे। लोगों में उसके दान, शील, तप, भावना के किस्से मशहूर थे। धनहीन जीर्ण भक्तिहीन नहीं था। वह सामुद्रिक शास्त्र का ज्ञाता था। एक दिन वह सुबह उठा। भगवान महावीर के पद चिन्हों को देखते-देखते वह उसी उद्यान में पहुंचा, जहां प्रभु महावीर ध्यानस्थ थे। वह प्रभु महावीर को देख बहुत प्रसन्न हुआ।[89]

प्रतिदिन वह उस उद्यान में आता और प्रभु महावीर के दर्शन करता। उन्हें वह आहार-पानी हेतु पधारने की प्रार्थना भी करता। निरंतर चार मास जीर्ण सेठ चातक की तरह प्रभु महावीर का श्रद्धावश इन्तजार करता रहा। प्रभु महावीर अभी तक जीर्णा पधारे नहीं थे। जीर्ण सेठ ने सोचा- 'मासिक तप होगा। महीना बीतने पर प्रभु महावीर पधारेंगे।'

सेठ ने पहले एक मास इंतजार किया। प्रभु महावीर नहीं आए। फिर इसी तरह दूसरा मास इंतजार करने लगा। प्रभु महावीर ध्यानावस्था में थे। वह भिक्षा के लिए नहीं निकले थे। वर्षामास का तीसरा मास बीत रहा था। प्रभु महावीर ने यह मास भी तप में गुजारा। भिक्षा ग्रहण नहीं की। चातुर्मास समाप्ति पर था। इधर जीर्ण सेठ की भावना बलवती हो रही थी। उसे हर क्षण प्रभु का इंतजार था।

इंतजार इंतजार होता है। जीवन ही एक लम्बे इंतजार का नाम है। हम हर क्षेत्र में इंतजार करते हैं। इंतजार सहनशीलता का पर्याय है। चातुर्मास समाप्त होने वाला था। उसने प्रभु महावीर से भिक्षार्थ पधारने की प्रार्थना की। प्रार्थना करके वह प्रभु महावीर का इंतजार करने लगा। जैन श्रमण किसी के निमन्त्रण पर भिक्षा ग्रहण नहीं करता। भिक्षा के ४२ दोष होते हैं जो भिक्षु को टालने होते हैं। जहां दोष न हो, साधु वहां से भोजन ग्रहण करता है। दोपहर का समय आया। प्रभु महावीर भिक्षा के लिए उपवन से बाहर आए। वह वैशाली नगरी के उच्च, मध्यम, नीच सभी कुलों में भिक्षा की गवेषणा करने लगे। शुद्ध पिण्डैषणा करने लगे।